

Think
IAS... 



Think
Drishti

राजस्थान लोक सेवा आयोग (RAS/RTS)

समाजशास्त्र

(राजस्थान के विशेष संदर्भ सहित)



दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: RJM01



राजस्थान लोक सेवा आयोग (RAS/RTS)

समाजशास्त्र

(राजस्थान के विशेष संदर्भ सहित)



641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

दूरभाष : 011-47532596, 8750187501

टोल फ्री : 1800-121-6260

Web : www.drishtiIAS.com

E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें

 www.facebook.com/drishtithevisionfoundation

 www.twitter.com/drishtiiias

1. भारत में समाजशास्त्रीय विचारों का विकास	5–13
2. सामाजिक मूल्य	14–18
3. जाति, वर्ग और व्यवसाय	19–29
3.1 जाति व्यवस्था	20
3.2 वर्ग व्यवस्था	25
3.3 व्यवसाय	27
4. संस्कृतीकरण	30–32
5. वर्ण, आश्रम, पुरुषार्थ और संस्कार व्यवस्था	33–43
5.1 वर्ण व्यवस्था	33
5.2 आश्रम व्यवस्था	35
5.3 पुरुषार्थ	37
5.4 संस्कार व्यवस्था	39
6. धर्मनिरपेक्षता	44–52
6.1 धर्मनिरपेक्षता की भारतीय धारणा	44
6.2 क्या भारत धर्मनिरपेक्ष समाज है?	46
6.3 राजनीति व धर्म का संबंध	47
6.4 धर्मनिरपेक्ष राज्य की धारणा	48
6.5 क्या भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है?	49
7. सामाजिक मुद्दे एवं सामाजिक समस्याएँ	53–101
7.1 निर्धनता	53
7.2 महिलाओं के प्रति अपराध	55
7.3 वेश्यावृत्ति	59
7.4 बाल विवाह	62
7.5 बाल मजदूरी	63

7.6	बंधुआ मजदूरी	65
7.7	दहेज प्रथा	68
7.8	सांप्रदायिकता/धार्मिक असहिष्णुता	70
7.9	क्षेत्रवाद	76
7.10	महिलाओं से छेड़छाड़ एवं यौन उत्पीड़न	79
7.11	बलात्कार	81
7.12	महिलाओं का दुर्व्यापार	85
7.13	जनसंख्या एवं संबद्ध मुद्दे	88
7.14	बेरोजगारी	91
7.15	बाल अपराध	92
7.16	मादक पदार्थों का दुरुपयोग	93
7.17	आतंकवाद	94
7.18	भ्रष्टाचार	95
7.19	काला धन	97
7.20	अंधविश्वास	98
7.21	जाति व्यवस्था	99
8.	राजस्थान में जनजातीय समुदाय	102-119

भारत में समाजशास्त्रीय विचारों का विकास (Development of Sociological Thoughts in India)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्ट कांटे ने वर्ष 1838-39 में समाजशास्त्र शब्द गढ़ा। इन्हें समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। समाजशास्त्र लैटिन भाषा के socius या societies तथा ग्रीक भाषा के logus से मिलकर बना है। societies का अर्थ समाज, साथी या सहयोगी होता है तथा logus का अर्थ अध्ययन या विज्ञान है, अर्थात् समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है या समाज का अध्ययन ही समाजशास्त्र है।

समाज सामाजिक संबंधों की एक दुनिया है जो मानव अंतर-क्रियाओं एवं पारस्परिक संबंधों से जुड़ा होता है। एक अनुशासन के रूप में समाजशास्त्र पश्चिमी बौद्धिक प्रवचन का एक उत्पाद है।

कालांतर में दुर्खीम, स्पेंसर, मैक्स वेबर एवं अन्य विद्वानों ने समाजशास्त्र को एक अकादमिक विज्ञान के रूप में विकसित करने हेतु अपने महत्वपूर्ण योगदान दिये। समाजशास्त्र की उत्पत्ति के मूल स्रोतों पर प्रकाश डालते हुए गिंसबर्ग ने लिखा है कि स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति राजनीति, दर्शन, इतिहास, विकास के जैविकीय सिद्धांत एवं उन सभी सामाजिक और राजनीतिक सुधार आंदोलनों पर आधारित है जिन्होंने सामाजिक दशाओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक समझा। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन व मानवीय संबंधों की जटिलता के अध्ययन का विश्लेषण, दोनों को यथार्थता की कसौटी पर कसने के लिये समाजशास्त्र का आविर्भाव एक समाजविज्ञान के रूप में 19वीं शताब्दी में हुआ।

विभिन्न विद्वानों ने समाजशास्त्र को एक समाज-वैज्ञानिक विषय व सामाजिक विषय के रूप में अपने-अपने तरीकों से परिभाषित करने के प्रयास किये। विषयांतर्गत सार को समझने हेतु कुछ परिभाषाएँ निम्नवत हैं-

वार्ड के अनुसार- “समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है”

गिडिंग के अनुसार- “समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है”

मैक्स वेबर के अनुसार- “समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो कि सामाजिक क्रिया के व्याख्यात्मक बोध को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जिससे उसकी प्रक्रिया व प्रभावों की बुद्धिसंगत व्याख्या की जा सके”

गिंसबर्ग के अनुसार- “समाजशास्त्र मानवीय अंतर्क्रियाओं और अंतर्संबंधों, उनकी दशाओं एवं परिणामों का अध्ययन है।

शुरुआत में यह मानव विज्ञान से जुड़ा हुआ था। हालाँकि, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान की वृद्धि तीन चरणों के माध्यम से पारित की गई।

1. प्रथम चरण- 1773-1900

2. दूसरा चरण - 1901-1950

3. तीसरा चरण- 1950 से अब तक

प्रथम चरण- 1773-1900

वर्ष 1900 से पहले, समाजशास्त्र ने भारतीय समाज और संस्कृति को समझने हेतु ब्रिटिश प्रशासकों के लिये उपकरण के रूप में पहचान बनाई। 1784 में, विलियम जोन्स ने भारत में प्रकृति और मनुष्य का अध्ययन करने के लिये बंगाल की दि एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की।

इसके बाद जनगणना का उपयोग परिवर्तन से पहले सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को समझने के लिये किया गया था तथा महामारी, अकाल आदि को नियंत्रित करने में मदद की गई थी।

दूसरा चरण- 1901-1950

20वीं शताब्दी के शुरुआत में, पेशेवर समाजशास्त्री, जैसे- हर्बर्ट रिस्ले (रिजले) (जनजाति/जाति), ब्राउन (अंडमान द्वीपसमूह) ने भारत में जनजाति के घातक पहलुओं पर काम करना शुरू कर दिया।

बॉम्बे, कलकत्ता और लखनऊ विश्वविद्यालय में अनुशासन के रूप में समाजशास्त्र ने बीएन सील, जीएस घूर्ये, बीके सरकार, राधाकमल मुखर्जी, डी.पी. मुखर्जी और के.पी. चट्टोपाध्याय के योगदान के कारण उपस्थिति बनाई।

- दूसरे में इन्होंने बताया कि भारत के गाँव सामाजिक विश्लेषण की एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं तथा इस पर ऐतिहासिक अवधारणात्मक परिचर्चाएँ कीं।
- श्रीनिवास की गाँव संबंधी इस अवधारणा पर विवाद हुआ तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों में, जैसे- लुई ड्यूमों का तर्क था कि जाति जैसी सामाजिक संस्थाएँ गाँव की तुलना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थीं, क्योंकि एक गाँव कुछ लोगों का समूह था जो एक निश्चित या विशेष स्थान पर रहते थे। गाँव बने रह सकते हैं या समाप्त भी हो सकते हैं तथा गाँव के लोग एक गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव में जा सकते हैं लेकिन उनकी सामाजिक संस्थाएँ, जैसे- जाति एवं धर्म, हमेशा उनके साथ रहती हैं और जहाँ-जहाँ वे जाते हैं वहाँ-वहाँ वे सक्रिय रहती हैं। इस प्रकार ड्यूमों का मानना था कि गाँव एक निश्चित सामाजिक पहचान हैं।

गाँव का महत्त्व

- गाँव ग्रामीण शोधकार्यों के स्थान के रूप में भारतीय समाजशास्त्र को लाभ पहुँचाते हैं।
 - गाँव ने नृजातीय शोधकार्य की प्रक्रिया के महत्त्व से पहचान कराने का अवसर दिया तथा नए राष्ट्र में जब विकास संबंधी योजनाएँ बन रही थीं तो उस समय में इसने भारतीय गाँवों में होने वाले परिवर्तन की आँखों देखी जानकारी दी।
 - अतः यह हो सकता है कि गाँव के अध्ययन से ही संपूर्ण भारत का विकास हुआ तथा समाजशास्त्रियों को कार्य क्षेत्र मिला।
- प्रो. श्यामाचरण दुबे-** प्रो. दुबे प्रतिष्ठित मानवशास्त्री एवं समाजशास्त्रियों में से एक हैं। उनका व्यक्तित्व प्रलेखन बहुआयामी रहा है। इनके विचार निम्नलिखित हैं:

- इन्होंने ग्रामीण जीवन, जनजातियों, परंपरा का प्रबंधन तथा विकास आदि पर विशेष अध्ययन और विचार प्रस्तुत किया, जो आज भी भारतीय समाजशास्त्रीय धरोहर के अंग हैं।
- इन्होंने मध्य प्रदेश की स्थानांतरित कृषि करने वाली कमार जाति का अध्ययन कर समाजशास्त्रीय जीवन में प्रवेश किया।
- इन्होंने आंध्र प्रदेश के शामीर पेठ गाँव का अध्ययन किया तथा वहाँ के विभिन्न पहलुओं, जैसे- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा कर्मकांडीय संरचना, जीवन-स्तर, पारिवारिक संबंध सामुदायिक जीवन एवं बदलते स्वरूप की विवरणात्मक व्याख्या की।
- प्रो. दुबे ने सामुदायिक विकास योजनाओं के भारतीय ग्रामों पर पड़ने वाले प्रभावों को लेकर एक अतिरिक्त अध्ययन 'भारत के बदलते हुए गाँव' नाम से किया। इस अध्ययन में उन्होंने सामुदायिक विकास में मानव तत्त्व की महत्ता एवं उसकी मुख्य भूमिका को रेखांकित किया।
- इसके साथ-साथ इसमें योजनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुए परिवर्तन और तत्जनित समस्याओं का मूल्यांकन किया। इन्होंने भारत की कार्यशील विभिन्न परंपराओं का भी ब्यौरा प्रस्तुत किया।

परीक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण तथ्य

- शरत चंद्र राय ने वर्ष 1922 में 'मैन इन इंडिया' नामक जर्नल की स्थापना की। यह उस समय का पहला जर्नल था।
- जी.एस.घूर्ये ने इंडियन सोशियोलॉजिकल सोसायटी की स्थापना की तथा सोशियोलॉजिकल बुलेटिन नामक जर्नल भी निकाला।
- अक्षय रमन लाल देसाई ने वर्ष 1961 में 'रूरल ट्रांजीशन इन इंडिया' नामक पुस्तक प्रकाशित की।
- देसाई का प्रसिद्ध निबंध 'द मिथ ऑफ द वेलफेयर स्टेट' है।

प्रशासक-नृशास्त्री- यह पद उन ब्रिटिश प्रशासकों के लिये प्रयुक्त होता है जो 19वीं सदी तक प्रारंभिक ब्रिटिश भारतीय सरकार के भाग थे तथा जिन्होंने नृजातीय अनुसंधानों को प्रारंभ करने में अत्यधिक रुचि ली, विशेषकर सर्वे तथा जनगणना। इनमें से कुछ सेवानिवृत्ति के पश्चात् नामी नृशास्त्री बने। प्रमुख नामों में एडगर थर्सटन, विलियम क्रूक, हरबर्ट रिजले तथा जे. एच. हट्टन शामिल हैं।

मानवमिति/नुमिति- नृशास्त्र का एक विभाग जो मनुष्य की प्रजाति का अध्ययन उसकी शरीर की माप, विशेषकर उसकी खोपड़ी के भार, सिर की चौड़ाई तथा नाक की लंबाई के आधार पर करता है।

समायोजन - वह प्रक्रिया जिसमें एक संस्कृति (विशेषतः बड़ी अथवा अधिक प्रभावी) दूसरी संस्कृति को अपने अंदर समा लेती है तथा पहली संस्कृति में मिल जाती है, ताकि यह प्रक्रिया के अंत में जीवित या अलग से दिखाई न दे।

अंतर्विवाह- सामाजिक संस्था जहाँ वैवाहिक रिश्ते केवल अपनी जाति में ही किये जाते हैं; इस निश्चित वर्ग के बाहर विवाह निषेध होते हैं। इसका आम उदाहरण जाति विवाह है, जहाँ विवाह अपनी ही जाति के व्यक्ति से होता है।

बहिर्विवाह- सामाजिक संस्था जहाँ कुछ वर्गों में वैवाहिक संबंध निषिद्ध होते हैं। विवाह इन निषिद्ध वर्गों के बाहर होना चाहिये। आम उदाहरण हैं- खून के रिश्तेदारों में विवाह निषेध (सपिंड बहिर्विवाह), एक गोत्र में विवाह निषेध (सगोत्र बहिर्विवाह) अथवा एक ही गाँव अथवा क्षेत्र में विवाह निषेध (गाँव/क्षेत्र बहिर्विवाह)।

मुक्त व्यापार- फ्राँसीसी मुहावरा (शाब्दिक अर्थ 'जैसा है' अथवा 'अकेला छोड़ो') जो राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांत के लिये प्रयुक्त होता है जहाँ अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक संबंधों में राज्य कम-से-कम हस्तक्षेप करता है; मुक्त बाजार की दक्षता तथा नियामक शक्तियों की मान्यता से जुड़ा है।

अति लघुउत्तरीय प्रश्न (उत्तर लगभग 15-20 शब्दों में दीजिये)

- | | |
|---|--|
| <p>1. उन चार शास्त्रीय भारतीय समाजशास्त्रियों के नाम बताइये जिन्होंने भारतीय समाजशास्त्र में अग्रगामी योगदान दिया हो?
RAS (Mains) 2016</p> <p>2. कल्याणकारी राज्य से क्या तात्पर्य है?</p> | <p>3. भारतीय गाँव पर लुई के क्या दृष्टिकोण थे?</p> <p>4. भारत में घूर्ये को संस्थापीय समाजशास्त्र का संस्थापक क्यों समझा जाता है?</p> <p>5. डी.पी. मुखर्जी का परिवर्तन सिद्धांत क्या है?</p> |
|---|--|

लघुउत्तरीय प्रश्न (उत्तर लगभग 50-50 शब्दों में दीजिये)

- | | |
|---|---|
| <p>1. जी.एस. घूर्ये द्वारा प्रदत्त जाति की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
RAS (Mains) 2016</p> <p>2. क्या कल्याणकारी राज्य की सोच एक मिथ्या या सच्चाई है? स्पष्ट कीजिये।</p> | <p>3. जीवंत परंपरा से आप क्या समझते हैं?</p> <p>4. भारत में जाति या प्रजाति पर हर्बर्ट रिज़ले एवं घूर्ये के विचारों को स्पष्ट करें।</p> <p>5. परंपरा से क्या समझते हैं?</p> |
|---|---|

दीर्घउत्तरीय प्रश्न (उत्तर लगभग 100 या 200 शब्दों में दीजिये)

- | | |
|--|---|
| <p>1. ग्राम को समाजशास्त्रीय अनुसंधान का विषय बनाने के संदर्भ में तर्क दीजिये।</p> | <p>2. एम. एन. श्रीनिवास की ग्रामीण अध्ययन को आगे बढ़ाने में क्या भूमिका है?</p> |
|--|---|

सामाजिक मूल्य से अभिप्राय समाज में स्थापित मानदंडों के समुच्चय से है, जिसका पालन समाज में एकरूपता लाने के लिये किया जाता है। ये सामाजिक मूल्य मानव के अधिकतम कल्याण के लिये समाज के मानक होते हैं। ये मूल्य समाजीकरण की लंबी प्रक्रिया का परिणाम होते हैं। इनमें मुख्यतः शामिल हैं- मानवता, सदाचरण, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुत्व, प्रेम, आदर, शांति इत्यादि। मूल्य मानवीय क्रियाओं को सशक्त करते हैं, ऊर्जा प्रदान करते हैं, जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के हित के लिये आवश्यक है। सामाजिक मूल्यों के समाज में प्रभावी अनुपालन को सुनिश्चित करने में शिक्षा व्यवस्था, परिवार, सामाजिक प्रभाव, साहित्य, मीडिया-संचार माध्यम तथा रोल मॉडल का विशेष योगदान होता है।

सामाजिक मूल्यों के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान परिवार का होता है। परिवारिक वातावरण एवं मनोवृत्ति तथा विचारों एवं सामाजिक संस्थाओं के प्रति प्रतिक्रिया से मनो-सामाजिक स्तर पर सामाजिक मूल्यों के प्रति विश्वास एवं आस्था अथवा अविश्वास का विकास होता है। उदाहरणस्वरूप एकल परिवार से वैयक्तिक स्वतंत्रता का मूल्य, जबकि संयुक्त परिवार से संगठित रहने का मूल्य विकसित होने की अधिक संभावना होती है।

शिक्षण संस्थान आधारभूत शिक्षा तथा उच्च शिक्षा के स्तर पर सामाजिक मूल्यों के प्रति सम्मान की भावना का सृजन कर इनके अनुपालन को सुनिश्चित करने में सहायक होते हैं। विभिन्न विचारधाराओं के संपर्क में आने तथा पाठ्यक्रमों में स्वतंत्रता, समानता, अहिंसा, बंधुत्व और मानवाधिकारों के महत्व के प्रति जागरूक होने से सामाजिक मूल्यों के प्रतिष्ठान में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

सामाजिक मूल्यों के विकास में स्वयं समाज का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ समाज में ज्यों-ज्यों संपर्क बढ़ता है, सामाजिक मूल्यों के प्रति चेतना का विकास भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। सामाजिक समूहों में सक्रियता, मीडिया का प्रभाव, स्वयं का समाज के प्रति संवेदनशील एवं सजग रहना आदि सामाजिक मूल्यों के विकास एवं अनुपालन को सुनिश्चित करने में विशेष योगदान प्रदान करते हैं।

सामाजिक मूल्यों की विशेषताएँ (Features of social values)

- सामाजिक मूल्य सामाजिक सहमति का परिणाम होते हैं, जिन्हें समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होती है।
- ये मूल्य, समय एवं स्थान सापेक्ष होते हैं। विभिन्न देशों, संस्कृतियों या भू-भागों में सामाजिक मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे- विवाह तथा तलाक संबंधी मूल्य अलग-अलग देशों में वहाँ की मान्यताओं के अनुरूप अलग-अलग हो सकते हैं।
- सामाजिक मूल्य गतिशील एवं परिवर्तनशील होते हैं। ये बदलते समय तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं, जैसे- सती प्रथा भारत में पहले एक मूल्य के रूप में स्थापित थी, किंतु आज इसकी आलोचना होती है तथा यह पूर्णतः वर्जित है।
- सामाजिक मूल्य संबंधित समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं। समाज द्वारा प्रदत्त स्वीकृति ही सामाजिक मूल्यों को सशक्त एवं प्रभावी रूप में स्थापित करने में सहायता करती है।
- सामाजिक मूल्य जन भावनाओं से जुड़े होते हैं तथा ये समाज के कल्याण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होते हैं।
- सामाजिक मूल्य निरपेक्ष नहीं होते हैं। ये समय, समाज एवं परिस्थिति सापेक्ष होते हैं। साथ ही कभी-कभी सामाजिक मूल्यों के प्रति विश्वास में पीढ़ीगत अंतराल भी पाया जाता है।

सामाजिक मूल्यों का प्रभाव/महत्व (Effects/Importance of social values)

- सामाजिक मूल्य व्यक्तियों को उनके व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबंधों में कर्तव्यों एवं दायित्वों के निर्धारण में सहायता करते हैं।

‘जाति’ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की ‘जन’ धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ ‘प्रजाति’ अथवा ‘भेद’ से लिया जा सकता है। अंग्रेज़ी में जाति हेतु ‘कास्ट’ शब्द का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेज़ी के इस शब्द ‘कास्ट’ (Caste) की उत्पत्ति पुर्तगाली मूल के शब्द कास्टा (Casta) से हुई है जिसका अर्थ है ‘नस्ल’, ‘प्रजाति’ तथा ‘जन्म’।

न्याय सूत्र में जाति के संदर्भ में ‘समान प्रसवात्मिका जाति’ नामक शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है जाति समान जन्म वाले लोगों को मिलाकर बनती है। न्याय सिद्धांत मुक्तावली में जाति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- ‘नित्यत्वे सति अनेक समवेतत्वम्जातिवर्त्य’ अर्थात् जाति वह है जो नित्य है और अपनी तरह की समस्त वस्तुओं में समवाय संबंध से विद्यमान है। इन परिभाषाओं एवं शब्द व्युत्पत्ति से स्पष्ट होता है कि जाति एक व्यापक शब्द है जो किसी भी चीज़ के प्रकार या वंश-किस्म (स्पीशीज) को संबोधित करने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी क्रम में जाति को मानव समाज में मनुष्यों के अन्तर्विवाही समूह या समूहों का योग माना जाता है जिसे एक सामान्य नाम प्राप्त होता है तथा जिसकी सदस्यता जन्मता प्राप्त होती है। इसके सदस्य पैतृक व्यवसाय करते हैं।

जाति को विभिन्न विद्वानों द्वारा भी परिभाषित किया गया है इनमें कुछ प्रमुख हैं- रिजले के अनुसार, “जाति ऐसे परिवारों या परिवार समूहों का संग्रह है जिनके समान नाम हों, जो अपनी जाति की उत्पत्ति किसी पौराणिक या ऐतिहासिक व्यक्ति से मानते हों, जो एक ही पुरश्चैनी व्यवसाय करने का प्रदर्शन करते हों और जिन्हें ऐसे सभी दूसरे व्यक्ति, जो इस संबंध में राय देने के अधिकारी हों, एक समांगी बिरादरी मानते हों” केलकर ने कहा है कि “जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसकी दो विशिष्टताएँ होती हैं- (i) इसके वही सदस्य हो सकते हैं जो किसी सदस्य के बेटे हों और इसमें ऐसे सभी व्यक्ति शामिल हैं जो इस प्रकार जन्में हों, (ii) सदस्य इस समूह के बाहर विवाह नहीं कर सकते। इनमें से हर समूह का अपना अलग-अलग नाम है। विशाल समूह कई समूहों से मिलकर बने होते हैं जिनके स्वतंत्र नाम होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि समूहों के चक्र होते हैं और इनमें से किसी भी समूह के किसी भी चक्र को जाति कहा जा सकता है। कोई भी समूह अपने से बड़े या छोटे समूह की तुलना में जाति या उपजाति कहा जाता है।” डॉ. वी.ए. स्मिथ के अनुसार, “जाति परिवारों के उस समूह को कहते हैं जो विवाह और खान-पान संबंधी कुछ संस्कारों की पवित्रता का पालन करने के लिये निर्धारित नियमों से बंधा हो।”

उपर्युक्त परिभाषाएँ स्पष्ट करती हैं कि जाति एक प्रकार का सामाजिक समूह है जिसकी सदस्यता जन्म द्वारा निर्धारित होती है और यह अपने सदस्यों पर खान-पान, पेशा, विवाह और सामाजिक सहवास संबंधी अनेक निर्बन्धन आरोपित करता है।

यदि भारत की बात करें तो स्पष्ट होता है कि यहाँ जाति का स्वरूप अत्यधिक विभिन्नता लिये हुए है जिसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा तय करना अत्यंत कठिन कार्य है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है, क्योंकि एन.के. दत्ता एवं कई अन्य विद्वानों ने जाति की परिभाषा के स्थान पर उसकी विशेषताओं का वर्णन किया है। अतः ‘जाति’ शब्द भ्रमित करने वाला है क्योंकि विभिन्न संदर्भों में इसे अलग-अलग अर्थों में तथा भिन्न सामाजिक श्रेणियों हेतु प्रयोग किया जाता है। इसलिये उचित होगा कि जाति नामक शब्द का प्रयोग उस अंतर्विवाही समुदाय हेतु किया जाए जिसकी आनुष्ठानिक प्रस्थिति लगभग परिभाषित है और जिसके साथ कोई व्यवसाय भी पारंपरिक रूप से जुड़ा हुआ है।

भारत में जाति की उत्पत्ति के कारण और काल के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। एक मत है कि श्वेतवर्ण विजेता आर्यों और श्यामवर्ण विजित अनार्यों के संघर्ष के फलस्वरूप आर्य एवं दास नामक दो जातियों का जन्म हुआ। इन्हीं से कालक्रम में वर्ण संकरण, व्यवसाय, धर्म, संस्कृति, श्रमविभाजन, भौगोलिक तथा प्रवास जैसे कारणों से अनेक जातियाँ उत्पन्न हुईं। दूसरा मत है कि जाति का उदय आर्यों के आगमन से पूर्व ही अनार्य समाज में हो चुका था तथापि आर्यों के आगमन ने इसे नवीन रूप अवश्य प्रदान किया। आर्यों के विभिन्न समूह संभवतः अपने विश्वासों, संस्कृति, धार्मिक कर्मकांडों के कारण पृथक् बने रहे और अंततः अंतर्विवाह यानी सजातीय विवाह समाज के अंग बने।

संस्कृतीकरण शब्द की अवधारणा एम.एन. श्रीनिवास ने दी है। संस्कृतीकरण से आशय एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें निम्न जाति या जनजाति या अन्य समूह, उच्च जातियों खासकर, द्विज जाति की जीवन पद्धति, अनुष्ठान, मूल्य, आदर्श तथा विचारों का अनुकरण/नकल/अवतरण करते हैं।

संस्कृतीकरण के बहुलकृत प्रभाव हैं, इसके प्रभाव भाषा, विचारधारा, साहित्य, नृत्य, संगीत, नाट्य, अनुष्ठान व जीवन चक्र पर देखने को मिलते हैं। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया मूलतः हिंदू समाज के तहत स्थापित/विद्यमान है, लेकिन श्रीनिवास के अनुसार यह प्रक्रिया गैर-हिंदू संप्रदाय तथा अन्य समूहों में देखी जा सकती है। अलग-अलग तरीकों से किये गए अध्ययनों में यह पाया गया कि संस्कृतीकरण देश के अनेक हिस्सों में भिन्न-भिन्न ढंग से होता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ पर उच्चस्तर की सांस्कृतिक जातियों का प्रभुत्व था उस क्षेत्र की सभी संस्कृतियों में किसी-न-किसी स्तर का संस्कृतीकरण हुआ।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर संस्कृतीकरण की निम्नांकित विशेषताएँ प्रकट होती हैं।

- संस्कृतीकरण का संबंध निम्न जातियों से है।
- यह सामाजिक गतिशीलता को प्रकट करने वाली प्रक्रिया है।
- यह प्रक्रिया हिन्दू जातियों तक ही सीमित नहीं है।
- संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का संबंध किसी एक व्यक्ति या परिवार से नहीं है बल्कि एक समूह से है।
- संस्कृतीकरण के कई आदर्श हो सकते हैं।
- इस प्रक्रिया द्वारा उच्च जाति के प्राचीन मूल्यों एवं शब्दावली को भी अपनाया जाता है।
- संस्कृतीकरण की प्रक्रिया एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।
- इस प्रक्रिया के द्वारा सामाजिक पद में परिवर्तन के लिये एक निम्न जाति दो या तीन पीढ़ी पहले से अपना संबंध किसी उच्च जाति से जोड़ने लगती है।
- यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है।
- यह विचारधारा को ग्रहण करने वाली प्रक्रिया है।
- यह एक दोहरी प्रक्रिया है।

इस प्रकार से श्रीनिवास ने ग्रामीण समाज की धार्मिक संरचना एवं प्रकार्यों का विस्तृत उल्लेख किया है।

श्रीनिवास जी का कहना है कि “किसी भी समूह या वर्ग का संस्कृतीकरण उसकी प्रस्थिति को स्थानीय जाति संस्तरण में उच्चता की तरफ ले जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि संस्कृतीकरण संबंधित समूह की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में सुधार है तथा हिंदुत्व की महान प्रचलित परंपराओं के किसी स्रोत के साथ उसका संपर्क होता है जिसके फलस्वरूप उस वर्ग या समूह में उच्च चेतना का भाव उभरता है। इन महान परंपराओं का स्रोत कोई मठ, तीर्थ स्थल एवं मतांतर वाला संप्रदाय हो सकता है। लेकिन तीव्र असमानता वाला समाज जैसे भारतीय समाज में, उच्च जातियों की अनुष्ठान, ज्ञान, जीवन शैली, रीति-रिवाज आदि को निम्न जाति के द्वारा अपनाना मुश्किल है, इसका मुख्य कारण सामाजिक रुकावटें हैं। कहीं-कहीं पर परंपरागत तौर पर उच्च जाति के लोग उन निम्न जाति के लोगों को दंडित करते थे जो इस प्रकार की प्रक्रिया को करने का साहस करते थे।

संस्कृतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया की तरफ इशारा करता है जिसमें व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक दृष्टि से अनुव्यापी समूहों के रीति-रिवाज एवं नामों की नकल कर अपनी पहचान को उच्च बनाते हैं। इसका अधिकतर प्रारूप आर्थिक रूप से बेहतरी के लिये होता है। ऐसी स्थितियों में यह तर्क विद्यमान है कि जब व्यक्ति अमीर होने लगते हैं तो उनकी इच्छाओं और आकांक्षाओं/आशाओं को प्रतिष्ठित समूह भी स्वीकारने लगते हैं।

संस्कृतीकरण की संकल्पना कई स्तरों पर आलोचनात्मक रही है। पहली बार इस संकल्पना के संदर्भ में यह कहा गया कि इसमें सामाजिक गतिशीलता निम्न जाति के सामाजिक स्तरीकरण में ऊर्ध्वगामी परिवर्तन करती है, को अधिक बढ़ा-चढ़ाकर

वर्ण, आश्रम, पुरुषार्थ और संस्कार व्यवस्था (Varna, Ashram, Purusharth and Sanskar System)

5.1 वर्ण व्यवस्था (Varna System)

किसी भी समाज के व्यवस्थित संचालन हेतु आवश्यक माना जाता है कि सामाजिक कार्यों का विभाजन व्यक्ति की योग्यता, प्रकृति, प्रवृत्ति एवं उसके गुण व कर्मों के आधार पर किया जाए। व्यक्ति की कार्य क्षमता के आधार पर कर्म विभाजन करने को ही वर्ण व्यवस्था कहा जाता है। साधारण शब्दों में इसे विवेचित कर सकते हैं- जिस व्यवस्था के द्वारा व्यक्ति अपनी कार्य क्षमता के आधार पर कर्म का वरण करता है, वह वर्ण व्यवस्था कहलाती है। वर्ण शब्द की उत्पत्ति 'वृ' धातु से मानी गई है जिसका अर्थ है- वरण करना या चुनना। इसके अतिरिक्त वर्ण शब्द 'रंग' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यद्यपि मनुस्मृति में वर्ण व जाति शब्द प्रायः एक ही अर्थ में प्रयोग किये गए हैं, जैसा कि वर्तमान में भी देखने को मिलता है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार इसी वर्णव्यवस्था को माना गया है। हालाँकि, विश्व भर के अधिकांश समाजों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार 'वर्ग' को माना गया है, जबकि भारत में प्राचीनकाल से ही 'वर्ण एवं जाति' की व्यवस्था विद्यमान रही है। अनुमान है कि भारतीय समाज में कृषि विकास के परिणामस्वरूप एक नई उत्पादन व्यवस्था विकसित हुई जिसके संचालन के लिये श्रम विभाजन की आवश्यकता पड़ी और परिणामस्वरूप समाज में वर्ण व्यवस्था का उदय हुआ। श्रम एवं व्यवसाय के आधार पर जन्मे इन सामाजिक वर्णों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहा गया।

धार्मिक क्रियाओं एवं ज्ञान का संपादन ब्राह्मणों का वर्ण-धर्म माना गया। प्रशासन एवं सत्ता का कार्य क्षत्रियों का, आर्थिक उत्पादन और वितरण कार्य वैश्यों का वर्ण-धर्म था, जबकि शूद्रों का वर्ण-धर्म शारीरिक श्रम एवं सेवा का कार्य माना गया था। व्यवसाय पर आधारित होने के कारण वर्ण व्यवस्था कठोर नहीं थी। इस संदर्भ में ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध उद्धरण महत्वपूर्ण है- "मैं कवि हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी माँ पत्थर की चक्की चलाती हैं। धन की कामना करने वाले नाना कर्मों वाले हम एक साथ रहते हैं।" लेकिन यह स्थिति ज़्यादा समय तक कायम नहीं रही और समय के साथ वर्णाश्रम व्यवस्था काफी कठोर होती गई। पूर्व में जो वर्ण व्यवस्था कर्म आधारित थी वह धीरे-धीरे जन्म पर आधारित हो गई। विभिन्न वर्णों का अलग-अलग एक व्यापक घेरा बन गया। वर्णों के बीच अंतर्वर्णीय संबंधों की गुंजाइश पूरी तरह खत्म हो गई और रीति-रिवाजों की कठोरता के कारण, अर्थात् सामाजिक लचीलेपन के अभाव के परिणामस्वरूप कालांतर में वर्ण व्यवस्था को बौद्ध, जैन जैसे आंदोलनों की चुनौती का सामना भी करना पड़ा।

इस प्रकार कह सकते हैं कि वर्ण व्यक्ति के गुण तथा कर्म से संबंधित है। जिन व्यक्तियों के गुण व कर्म समान थे अर्थात् जो समान स्वभाव के थे, वे सभी एक ही वर्ण के सदस्य माने जाते हैं। श्री कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि "चातुर्वर्ण मया सृष्टं गुण कर्म विभाषण" अर्थात् मैंने ही गुण एवं कर्म के आधार पर चारों वर्णों की उत्पत्ति की है। इस कथन से स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण की ऐसी व्यवस्था है जो व्यक्ति के गुण तथा कर्म पर आधारित है तथा जिसके अंतर्गत समाज का 4 वर्णों के रूप में कार्यात्मक विभाजन हुआ है। गुण व कर्म का यहाँ पर संबंध व्यक्ति के स्वभाव एवं सामाजिक दायित्वों से है। अतः समाज के विभिन्न कार्यों को संपन्न करने हेतु मनुष्यों के रुझानानुसार उन्हें 4 वर्णों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक वर्ण स्वयं के वर्ण-धर्म का पालन करते हुए दायित्वों का निर्वहन करता है।

हालाँकि, के.एम. पाणिक्कर जैसे विद्वान भारतीय समाज के इस चतुर्वर्णी विभाजन को कोरी कल्पना मानते हैं, परंतु वास्तव में इसे कोरा आदर्श मानना भूल होगी, क्योंकि यह पूर्णतः व्यावहारिक व्यवस्था रही है और इसका आधार भी मुख्यतः से प्रजाति माना गया है तथा इस मूल वेदों में मिलता है।

‘धर्मनिरपेक्षता’ अंग्रेज़ी शब्द ‘Secularism’ का अनुवाद है, जो मूलतः लैटिन शब्द ‘Seculam’ से बना है। ‘Seculam’ का अर्थ होता है- इहलोक से संबंधित। अतः शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से ‘Secularism’ का अर्थ हुआ- वह विचारधारा जो मनुष्य को परलोक की चिंता छोड़कर इहलोक से संबंधित होने की प्रेरणा देती है। इसे धर्मनिरपेक्षता इसलिये कहा जाता है, क्योंकि यह विचारधारा पारंपरिक धर्मों की परलोककेंद्रित (That worldly) मानसिकता का विरोध करती है।

धर्मनिरपेक्षतावाद आधुनिक काल की एक भौतिकवादी (Materialist) तथा मानववादी (Humanist) विचारधारा है जो वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific Temper) के आधार पर इहलोक के महत्त्व की स्थापना करती है। भौतिकवादी होने के कारण यह भौतिक जगत को अंतिम सत्य मानती है तथा इसके पीछे ईश्वर, आत्मा या स्वर्ग जैसी पारलौकिक सत्ताओं को स्वीकार नहीं करती। मानववादी होने के कारण यह अपने चिंतन के केंद्र में मनुष्य और उसकी सांसारिक समस्याओं को रखती है। इस विचारधारा की प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार हैं-

धर्मनिरपेक्षतावाद धर्म का समर्थन नहीं करता क्योंकि धर्म पारलौकिक विश्वासों पर टिका होता है जबकि धर्मनिरपेक्षतावाद ऐसे विश्वासों से तटस्थ रहता है। **धर्म की उपेक्षा या विरोध** का दूसरा कारण यह भी है कि धर्म वैज्ञानिक मनोवृत्ति तथा भौतिक विकास में बाधक बनता है जबकि कुछ विचारकों के अनुसार भौतिक विकास ही मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य है। यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि धर्मनिरपेक्षतावाद मज़हब (Religion) वाले अर्थ में ही धर्म का विरोध करता है; भारतीय परंपरा के उस अर्थ में नहीं जिसमें धर्म को नैतिकता का समानार्थक माना गया है। धर्मनिरपेक्षतावाद की दूसरी प्रमुख मान्यता है- सिर्फ **इहलोक में विश्वास करना**। इस विचार का इतना अधिक महत्त्व है कि इसे कहीं-कहीं इहलोकवाद भी कहा जाता है।

धर्मनिरपेक्षतावादियों ने **विज्ञान और तकनीक के विकास पर अत्यधिक बल** दिया है। उनका दावा है कि मनुष्य का कल्याण और उसके सुखों में वृद्धि ईश्वर की प्रार्थना करने से नहीं, बल्कि विज्ञान-तकनीक के विकास से ही संभव है। विज्ञान का अर्थ है- उन नियमों की खोज करना जिनके अनुसार प्रकृति संचालित होती है। तकनीक इसका अगला स्तर है। इसका अर्थ है विज्ञान के नियमों का प्रयोग इस प्रकार करना कि मनुष्य को अधिकतम सुखों की प्राप्ति हो सके। प्रो. फ्लिंट का मानना है कि धर्मनिरपेक्षतावाद वह विचारधारा है जिसके अनुसार मनुष्य का कल्याण विज्ञान-तकनीक के हाथों से संभव है।

धर्मनिरपेक्षतावादी **धर्मनिरपेक्ष नैतिकता** (Secular Morality) पर बल देते हैं। धर्म और नैतिकता के पारस्परिक संबंध को लेकर हमेशा विवाद रहा है कि नैतिकता धर्म पर निर्भर है या धर्म से स्वतंत्र है। कई पारंपरिक चिंतक मानते हैं कि जो नैतिकता धर्म पर आधारित नहीं होती, वह वस्तुतः नैतिकता होती ही नहीं। प्रो. गैलवे, दोस्त्योवस्की तथा महात्मा गांधी जैसे चिंतक इस विचार के पक्ष में थे। धर्मनिरपेक्षतावादी इस मत का खंडन करते हुए दावा करते हैं कि नैतिकता की पहचान सामाजिक प्रतिबद्धता के आधार पर होनी चाहिये, न कि धार्मिक आधार पर क्योंकि कई धार्मिक कृत्य खुद अनैतिक होते हैं (जैसे- पशुओं की बलि इत्यादि) जबकि कई धर्मनिरपेक्ष कार्य अत्यंत नैतिक होते हैं।

6.1 धर्मनिरपेक्षता की भारतीय धारणा (Indian Notion of Secularism)

धर्मनिरपेक्षता एक जटिल तथा गत्यात्मक अवधारणा है। भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है जिन्हें मोटे तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

पहले वर्ग में आधुनिक उदारवादी विचारक आते हैं जो 19वीं शताब्दी के अंत व 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में थे। ये विचारक सामाजिक व धार्मिक सुधार आंदोलन से जुड़े थे और सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन में धर्म के विरोधी नहीं थे। इस वर्ग के प्रमुख विचारक थे- **दादा भाई नौरोजी, फिरोज़शाह मेहता तथा राजा राममोहन राय**। इन्होंने धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी विचारधारा को ही स्वीकार किया व राजनीति में किसी भी रूप में धर्म को शामिल न करने की प्रतिबद्धता

सामाजिक आदर्श से विचलन, वह स्थिति है जो समाज में अवांछनीय है तथा सामूहिक प्रयत्न से ही ठीक हो सकती हो, सामाजिक समस्या के रूप में देखी जाती है। सामाजिक आदर्श एक अमूर्त एवं अस्पष्ट अवधारणा है जिसका निर्धारण कठिन है। समाज में व्यापक रूप से स्वीकृत मानक, जिनसे समाज का सुचारु संचालन सुनिश्चित होता है, सामाजिक आदर्श कहलाते हैं। ये समाज को व्यवस्थित बनाने एवं उच्चतम संभव मानदंडों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

सामाजिक समस्या, समाज में व्याप्त ऐसी समस्याएँ हैं, जिनसे एक बड़ा समूह प्रभावित होता है तथा इन समस्याओं के कारण समाज में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होती है। ये सामाजिक उत्थान की प्रक्रिया में बाधक होते हैं तथा यथाशीघ्र इनके निवारण हेतु सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होती है। सामाजिक समस्याएँ अपने स्वरूप में व्यापक होती हैं तथा आपस में प्रायः अंतर्संबंधित होती हैं। इन्हें समाज में निंदनीय माना जाता है। इनके परिणाम व्यापक एवं समग्र समाज पर प्रभाव डालने वाले होते हैं। अतः इनका निवारण भी समग्र समाज का उत्तरदायित्व है।

भारत एक विकासशील देश है जहाँ पारंपरिकता, धर्म एवं आधुनिकता का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। सामाजिक विकास के क्रम में कई सामाजिक प्रथाएँ अर्थहीन हो जाती हैं तथा कुछ अन्य नई समस्याएँ जन्म लेती हैं। भारत में भी ऐसी अनेक सामाजिक समस्याएँ हैं जिनमें कुछ प्रमुख समस्याओं का वर्णन अग्रलिखित है-

7.1 निर्धनता (Poverty)

ऐसी स्थिति जिसमें कोई व्यक्ति स्वयं तथा अपने आश्रितों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होता है, निर्धनता कहलाती है। निर्धनता को समय एवं स्थान के सापेक्ष परिभाषित किया जाता है। निर्धनता के आयामों में मुख्यतः शामिल हैं-

- प्रतिदिन की जीविका रणनीतियों का अभाव
- संसाधनों, यथा-स्वर्णाभूषण, धन, भूमि इत्यादि की अनुपलब्धता
- आकस्मिक परिस्थितियों के प्रति असुरक्षा की भावना
- सामाजिक संबंधों को विकसित करने की अक्षमता

भारत में निर्धनता रेखा का निर्धारण प्रतिदिन कैलोरी ग्रहण के न्यूनतम स्तर के आधार पर किया जाता है जिसमें शहरी क्षेत्रों के लिये 2100 कैलोरी प्रतिदिन तथा ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 2400 कैलोरी प्रतिदिन को आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त विश्व बैंक के द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार प्रतिदिन \$1.9 से कम व्यय करने वाले व्यक्ति को निर्धनता की श्रेणी में माना जाएगा। तेंदुलकर समिति के अनुसार 2011-12 में भारत में गरीबी का स्तर 21.9% रहा जो 2004-05 में 37.2% था।

निर्धनता के प्रमुख कारण (Main causes of poverty)

- अशिक्षा निर्धनता का सबसे बड़ा कारण है। अशिक्षित व्यक्ति के पास रोजगार के विकल्प सीमित होते हैं। साथ ही निर्धन व्यक्ति अपनी एवं बच्चों की शिक्षा पर पर्याप्त व्यय करने में अक्षम होता है। इस प्रकार अशिक्षा एवं गरीबी का दुश्चक्र चलता रहता है।
- भारत की विशाल जनसंख्या हेतु सीमित संसाधनों के अनुकूलतम आवंटन एवं वितरण की विफलता तथा तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर गरीबी का एक मुख्य कारण है।
- निर्धनता व्यक्ति के रहन-सहन के साथ उसकी मानसिकता को भी प्रभावित करती है जिससे गरीबी में जीने की आदत विकसित हो जाती है। इसे 'गरीबी की संस्कृति' कहा गया है।

राजस्थान में जनजातीय समुदाय (Tribal Communities in Rajasthan)

भारतीय समाज भिन्न-भिन्न जाति समूहों का स्थल है। कुछ जनजातियाँ प्रायः शहरी सभ्यता से अलग-थलग कहीं दूर घने जंगलों, पर्वतों, घाटियों एवं पठारी क्षेत्रों में निवास करती हैं। प्रारंभ में लगातार शुद्ध जलवायु एवं कंदमूल, फल आदि के सेवन से इनका जीवन निरोगी एवं स्वस्थ बना रहता था। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास स्वतः हो जाता था। परंतु, वर्तमान में उद्योगों का बढ़ता स्तर, शहरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के बढ़ते दबाव ने इनके संपूर्ण परिवेश को दूषित कर दिया है।

- सामान्यतः लोग आदिवासी शब्द का अर्थ 'असभ्य मानव या पिछड़े हुए समूहों से लगाते हैं, जिनका निवास एक निश्चित क्षेत्र में होता है तथा वे सामान्य भाषा बोलते हैं और सामान्य संस्कृति प्रयोग में लाते हैं। वस्तुतः आदिवासी से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष के मूल निवासी होने से है। जनजाति शब्द के संदर्भ में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयुक्त ने 1952 ई. में प्रस्तुत रिपोर्ट में जनजाति समूह की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया है-
- जनजाति समूह सभ्य समाज से दूर वनों एवं पहाड़ियों या दूरस्थ स्थानों में निवास करते हैं।
- जनजाति समूह एक ही प्रकार की बोली बोलते हैं।
- जनजाति समूह का व्यवसाय शिकार एवं भोजन एकत्र करना होता है।
- इनका जीवन घुमंतू प्रवृत्ति का होता है और ये नृत्य एवं मदिरापान के प्रेमी होते हैं।

राजस्थान की विभिन्न जनजातियों की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का विवरण निम्नलिखित है-

भील (Bhil)

- भील जनजाति मीणा जनजाति के पश्चात् राज्य में दूसरे स्थान की बड़ी जनजाति है। भील शब्द द्रविड़ भाषा के भील का ही अपभ्रंश है जिसका शाब्दिक अर्थ तीर-कमान होता है।
- भील जनजाति योद्धा जनजाति के रूप में भी प्रसिद्ध हैं तथा इनका मुख्य अस्त्र तीर-कमान है। इस प्रकार तीर-कमान चलाने में प्रखर होने के कारण ही यह जाति भील नाम से प्रसिद्ध हुई।
- कर्नल जेम्स टॉड ने इन्हें वन पुत्र की संज्ञा दी है। यह जाति राजस्थान की सबसे प्राचीन जनजाति है।
- भीलों को महाभारत काल में निषाद कहा जाता था।
- यह जनजाति राजस्थान के अधिकांश जिलों में निवास करती है। दक्षिणी राजस्थान के डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, उदयपुर, प्रतापगढ़, चित्तौड़गढ़ एवं सिरोही जिलों में इनकी आबादी अधिक है।

इस जनजाति का उल्लेख रामायण, महाभारत एवं पुराणों में हुआ है। अतः इन्हें आदिम मानव समूह कहा जाता है। भीलों के गाँव का मुखिया 'पालवी/तदवी' कहलाता है तथा भीलों के सभी गाँवों की पंचायत का मुखिया 'गमेती' कहलाता है। गमेती ही इनके सामाजिक एवं आर्थिक विवादों का निपटारा करवाता है।

आर्थिक जीवन

- यह आर्थिक दृष्टि से अत्यंत निर्धन जनजाति है। ये लोग घुमकड़ प्रवृत्ति वाले होते हैं लेकिन अब ये प्रदेश के अनेक भागों में कृषि करने लगे हैं।
- कृषि, पशुपालन और शिकार इनका प्रमुख व्यवसाय है। यह जनजाति वनों से लकड़ियों को काटने का भी कार्य करती हैं। ये तालाबों व नदियों से मछलियाँ पकड़ते हैं।
- भीलों द्वारा पहाड़ी ढलानों पर की जाने वाली कृषि को 'चिमाता' कहते हैं, यह एक प्रकार झूमिंग कृषि है जिसमें पहाड़ों पर वनों को काटकर या जलाकर भूमि साफ कर कृषि की जाती है।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ


- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- क्विक रिवीजन हेतु प्रत्येक अध्याय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com

E-mail : online@groupdrishti.com

 DrishtiIAS

 YouTube Drishti IAS

 drishtiias

 drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009

Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456